IF : 4.547 | IC Value 80.26

VOLUME-6, ISSUE-12, DECEMBER-2017 • ISSN No 2277 - 8160

Original Research Paper

History

व्यक्तित्व मीमांसा मे गुणस्थान

Dr. B.L. Sethi M. Phil., Ph. D., D.Litt. Professor Director, Trilok Institute of Higher Studies and Research, Hotel Om Tower, Church Road M.I. Road, Jaipur-302001

Dr. Shashi Morolia HOD History & Ph. D. Cordinater, JJT UNIVERSITY, JHUNJHUNU

KEYWORDS :

व्यक्तित्व मीमांसा मे गुणस्थान

मिथ्यात्व से लेकर मोक्षप्राप्ति तक जिन आध्यात्मिक दशाओं में से जीव विकास करता है, वे गुणस्थान कहलाते हैं। ये अवस्थाएँ अथवा आध्यात्मिक भूमिकाएँ चौदह हैं।[1]

1. मिथ्यात्व गुणस्थान

मोहनीय कर्म की मिथ्यात्व प्रकृति के उदय से जीव के समस्त मिथ्या भाव उत्पन्न होते हैं, जिनमें अधिकांश जीव अनादि काल से विद्यमान हैं यही मिथ्यात्व नामक प्रथम गुणस्थान होता है।

2. सासादन गुणस्थान

इसमें जीव सम्यक्त्व से च्युत होकर भी पूर्णतः मिथ्यात्व भाव को प्राप्त नहीं हो पाता।

3. मिश्र गुणस्थान

इसे सम्यक् मिथ्यात्व गुणस्थान भी कहा जाता है। सम्यक्त्व और मिथ्यात्व से मिले हुए परिणामवाला सम्यक् मिथ्यात्व या मिश्र गुणस्थान होता है।

4. असंयत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान

इस गुणस्थान में आत्मचेतना रूप धार्मिक दृष्टि तो प्राप्त हो जाती है क्योंकि कषायों की अनन्तानुबन्धी चार प्रकृतियों का उपशम, क्षय या क्षयोपशम हो जाता है, किन्तु अप्रत्याख्यानावरण कषाय का उदय बना रहता है।[2]

5. देशविरत व संयतासंयत गुणस्थान

जब अप्रत्याख्यानावरण कषाय का उपशमादि हो जाता है, तब जीव के अणुव्रत धारण करने योग्य परिणाम उत्पन्न हो जाते हैं और इस समय वह पाँचवे गुणस्थान को प्राप्त कर लेता है। इस गुणस्थान में जीव को प्रत्याख्यानावरण कषायों का उदय बना रहता है।

6. प्रमत्तसंयत गुणस्थान

प्रत्याख्यानावरण कषायों का उपशम होने पर जीव के परिणाम और भी विशुद्ध हो जाते हैं, वह महाव्रत धारण कर लेता है यही प्रमत्तसंयत गुणस्थान दशा है।

7. अप्रमत्त संयत गुणस्थान

प्रमत्तविरत गुणस्थान में संयमभाव पूर्ण होते हुए भी प्रमाद रूप मन्द कषायों का उदय रहता है जिसके कारण उसकी परिणति स्त्री कथा, चोर कथा आदि विकथाओं व इन्द्रिय विषयों आदि की ओर झुक जाती है, क्योंकि इस दशा तक जीव के संज्वलन कषायों का उदय रहता है। संज्वलन कषायों के उपशम पर ही जीव अप्रमत्त संयत गुणस्थान को प्राप्त होता है। यहीं से जीव को ध्यान की अवस्था का प्रारम्भिक सोपान दृष्टिगत होता है।

8. अपूर्वकरण गुणस्थान

अपूर्वकरण गुणस्थान से जीव की ध्यानावस्था प्रारम्भ हो जाती है। इस ध्यानावस्था में जब संयमी यथाप्रवृत्तकरण अर्थात् विशुद्धि की पूर्वधारा को चलाता हुआ और प्रतिक्षण शुद्धतर होता हुआ असाधारण आध्यात्मिक विशुद्धि को प्राप्त हो जाता है, जैसा पहले कभी नही हुआ था। इस तरह जीव आठवें गुणस्थान में आ जाता है।

9. अनिवृत्तिकरण गुणस्थान

आठवें गुणस्थान में किंचित् काल रहने पर जब ध्याता के प्रतिसमय के एक–एक परिणाम अपनी–अपनी विशेष विशु द्धि को लिए हुए भिन्न रूप होने लगते हैं तब अनिवृत्तिकरण नामक गुणस्थान प्रारम्भ हो जाता है। इस गुणस्थानवर्ती समस्त साधकों का उस समयवर्ती परिणाम एकसा ही होता है, किन्तु दूसरे समय का परिणाम प्रथम समय से भिन्न होगा।

10. सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थान

नवें गुणस्थान सम्बन्धी विशेष विशुद्धि के द्वारा जब कर्मों का इतना उपशमन व क्षय हो जाता है कि लोभ कषाय के अतिसूक्ष्मांश को छोड़कर शेष समस्त कषाय क्षीण या उपशान्त हो जाते हैं, तब जीव को सूक्ष्मसाम्पराय नामक दशवां गुणस्थान प्राप्त हो जाता है। केशर के रंगे हुए वस्त्र को धो डालने पर भी उसमें केशरी रंग की अतिसूक्ष्म आभास रह जाता है, उसी प्रकार इस गुणस्थानवर्ती के लोभ संज्वलन कषाय का अतिसूक्ष्म सद्भाव रह जाता है।

11. उपशान्त–कषाय गुणस्थान

जब जीव अवशिष्ट लोभ संज्वलन कषाय का भी उपशमन कर लेता है तब वह उपशान्तगुण स्थान को प्राप्त होता है। यह उपशम श्रेणी की चरम सीमा है।

12. क्षीणमोह गुणस्थान

जो जीव सातवें गुणस्थान से कर्मों का क्षय करते हुये ऊपर चढ़ते हैं, वे दसवें गुणस्थान के पश्चात् उसी शेष लोभ संज्वलन कषाय का क्षय करके ग्यारहवें गुणस्थान में न जाकर सीधे क्षीणमोह नामक बारहवें गुणस्थान को प्राप्त कर लेते हैं। ग्यारहवें व बारहवें दोनों गुणस्थानों में मोहनीय कर्म के अभाव से उत्पन्न आत्म विशुद्धि की मात्रा एक सी होती है और जीव पूर्णतः वीतरागी हो जाते हैं, किन्तु ज्ञानावरणी आदि कर्मों के सद्भाव के कारण केवल ज्ञान प्राप्त नहीं होता, इसलिये छद्मस्थ वीतराग कहलाते हैं। इन दोनों गुणस्थानों में भेद यह है कि ग्यारहवें गुणस्थान में मोहनीय कर्म उपशान्त अवस्था में भी शेष रहता है जो अन्तर्मुहूर्त के भीतर पुनः उभरकर जीव को नीचे के गुणस्थान में ढकेल देता है, किन्तु बारहवें गुणस्थान में मोह के सर्वथा क्षीण हो जाने के कारण इस पतन की कोई सम्भावना नहीं रहती।

13. सयोग केवली गुणस्थान

ज्ञानवरणी और दर्शनावरणी कर्मों की शेष प्रकृतियों का क्षय करके जब वह केवलज्ञान को प्राप्त हो जाता है, तब वह सयोग केवली गुणस्थान को प्राप्त होता है। इन केवलियों के दो भेद, प्रथम सामान्य केवली एवं दूसरा तीर्थंकर केवली है। इस गुणस्थान को सयोगी कहने की सार्थकता यह है कि इन जीवों के अभी भी शरीर का सम्बन्ध बना हुआ है व नाम, गोत्र, आयु और वेदनीय इन चार अघातिया कर्मों का उदय विद्यमान रहता है।

जब केवली काययोग से भी मुक्त हो जाता है तब अयोग केवली नामक चौदहवें गुणस्थान को प्राप्त कर लेता है। इस अष्टकर्म विमुक्त सर्वोत्कृष्ट सांसारिक अवस्था का काल अतिस्वल्प कुछ समय मात्र ही है जिसे पूर्ण कर जीव अपनी शुद्ध शाश्वत अनन्त–ज्ञान–दर्शन, सुख और वीर्य से युक्त परम अवस्था को प्राप्त कर सिद्ध बन जाता है।

उक्त चौदह गुणस्थानों में सुख के तारतम्य का भी विचार किया जा सकता है। सुख आत्मा का गुण है और वह उसमें सदा विद्यमान ररहता है परन्तु मोह के उदय से उसका विभाव परिणमन होता रहता है अतः ज्यों–ज्यों मोह का सम्पर्क आत्मा से दूर होता जाता है त्यों–त्यों सुख अपने स्वभाव रूप में परिणमन करने लगता है। मिथ्यादृष्टि जीव के मोह का पूर्ण उदय है इसलिए उसके सुख का बिल्कुल अभाव बतलाया है। मिथ्यादृष्टि जीव के जो विषय सम्बन्धी सुख देखा जाता है वह सुख का स्वाभाविक रूप न होकर वैभाविक रूप ही है। बारहवें गुणस्थान में मोह का सम्पर्क बिल्कुल टूट जाता है इसलिए वहाँ सुख स्वभाव रूप में प्रकट हो जाता है परन्तु वहाँ उस सुख को वेदन करने के लिए अनन्त ज्ञान का अभाव रहता है इसलिए उसे अनन्त सुख नहीं कहते। केवल ज्ञान होने पर वही सुख अनन्त सुख कहलाने लगता है।

1. आचार्य जिनसेन द्वितीय : हरिवंश पुराण, सम्पादक व अनुवादक – डॉ. पन्नालाल जैन, साहित्याचार्य, प्रकाशक – भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 2006, पृ. 30–33
2. आचार्य रविशेण : पदमपुराण, सम्पादक व अनुवादक – डॉ. पन्नालाल जैन, साहित्याचार्य, प्रकाशक – भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 2006, पृ. 15–41